७

आसोज शुक्ल १३, सोमवार, १९-१०-१९६४
श्री तारणस्वामी द्वारा रचित श्रावकाचार, गाथा-२३७, २४२, २४५, २४६, २४७, २४८, २५० से २५२, २६२, २६६, २७२, प्रवचन - २४

.... गाथा चलती है। २३७। गाथा - २३७। कल २३६ चल गयी।

दर्शनं सप्त तत्त्वानां, द्रव्य काय पदार्थकं।
जीव द्रव्यं च शुद्धं च, सार्थं शुद्ध दर्शनं॥२३७॥

देखो! पहले श्रावक को सम्यग्दर्शन शुद्ध होना चाहिए। सम्यग्दर्शन में सप्त तत्त्व- जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। ये सात पदार्थ, सात तत्त्वों की बराबर श्रद्धा होनी चाहिए। वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सात तत्त्व की... समझ में आया? सात तत्त्व की श्रद्धा, वह भेदवाली श्रद्धा है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

'**दर्शनं सप्त तत्त्वानां**' सात भिन्न-भिन्न तत्त्व जैसे हैं, वैसा श्रद्धान करना, उसको व्यवहार समकित अर्थात् कि वास्तविक समकित नहीं, (कहने में आता है)। परन्तु जिसको अपना शुद्ध आत्मा.. है न? '**जीव द्रव्यं च शुद्धं च, सार्थं शुद्ध दर्शनं**'। जिसको आत्मा शुद्ध ज्ञायक परिपूर्ण आनन्द (स्वरूप है), ऐसी अन्तर की दृष्टि निर्विकल्प श्रद्धा, भान हुआ हो, यथार्थ शुद्ध दर्शन वह है। यथार्थ सम्यग्दर्शन वह है। पण्डितजी! थोड़ा व्याख्यान हो गया है पहले। यह सातवाँ आया है आज, पहले एक हो गया है। ऐसे ... हो गया। कल एक बाकी है आपकी विनन्ती में। पण्डिती विनन्ती है न।... समझ में आया? उसमें कैसे अर्थ होता है? उसमें क्या है उसे पहले समझना चाहिए।

यहाँ एक गाथा में दो बात ली है। '**दर्शनं सप्त तत्त्वानां**'। अभी सात तत्त्व क्या है उसकी खबर नहीं हो। अजीव अजीव की क्रिया करते हैं, दया, दान का परिणाम पुण्य है, हिंसा, झूठे का भाव पाप है, आत्मा ज्ञायक भिन्न है।

मुमुक्षु : इसमें ऐसा कहाँ आता है, इसमें सात तत्त्व...

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आया ?

मुमुक्षु : नाम जान लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम जाना ? सात तत्त्वानां-सात भाव। सात भाव। आत्मा ज्ञायक चैतन्य है और आत्मा की पर्याय में दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प उठता है, वह पुण्य है। हिंसा, झूठ, चोरी पाप है। दोनों मिलकर आस्रव है। आत्मा का स्वभाव राग में रुकता है उतना भावबन्ध है। कर्म, शरीर आदि की क्रिया अजीव है। वह अपने से होती नहीं। और अजीव कर्म से मेरे में आस्रव, विकार होता नहीं। ऐसे सात तत्त्व की भेदपूर्वक श्रद्धा करना, उसका नाम व्यवहार सम्यग्दर्शन है। अर्थात् वह सम्यग्दर्शन सच्चा नहीं है। समझ में आया ?

और द्रव्य—छह द्रव्य। दूसरा बोल है न ? पण्डितजी ! छह द्रव्य। भगवान सर्वज्ञदेव ने छह द्रव्य कहे। द्रव्य के नाम भी नहीं आते हो। ...लालजी ! छह द्रव्य किसको कहते हैं ? भगवान जाने। आते हैं नाम ? नहीं। स्पष्ट बात करते हैं। डालचन्दजी ! छह द्रव्य के नाम आते हैं या नहीं ? नहीं आते हो तो कोई बात नहीं। अभी तक नहीं सीखा, इतनी उम्र हो गयी। अब सीखना। उसमें क्या ? सात तत्त्व.. सबकी भिन्न-भिन्न व्याख्या है, हाँ ! भिन्न-भिन्न की श्रद्धा करनी, उसका नाम व्यवहार समकित अर्थात् शुभराग है। और छह द्रव्य। छह द्रव्य है न ? उसमें द्रव्य है न ? छह द्रव्य अर्थ में लिखा है। छह द्रव्य। अनन्त आत्मा, वह जीवद्रव्य। ऐसे असंख्यात ... अनन्त परमाणु पुद्गल द्रव्य और धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। ऐसे छह द्रव्य अनादि-अनन्त भगवान के ज्ञान में आये हैं। छह द्रव्य को छह द्रव्यरूप यथार्थपने श्रद्धा करना, वह व्यवहार समकित अर्थात् शुभराग है। शुभराग है। निश्चय समकित और धर्म नहीं। समझ में आया ? जिसको इतना भी ठिकाना नहीं है, सात तत्त्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं, छह द्रव्य क्या है (खबर नहीं)।

काय-पंचास्तिकाय। उसमें काल निकाल दिया। काल में अस्ति है परन्तु काय नहीं। पंचास्तिकाय। काल है, असंख्य अणु है चौदह ब्रह्माण्ड में। एक-एक अणु में कालाणु में अनन्त-अनन्त गुण है। ऐसे असंख्य अणु पूरे लोक में एक-एक आकाश प्रदेश

में रहे हैं। काल की अस्ति है, परन्तु समुदाय के रूप में काय नहीं है। उसके सिवा पाँच काय (हैं)। जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय। ये पाँच काय जैसे हैं, ऐसी श्रद्धा करना, वह शुभरागरूपी व्यवहार समकित है। किसको? जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन होता है उसको। समझ में आया?

पदार्थ - नौ पदार्थ है। देखो! सात तत्त्व, छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय और नौ पदार्थ। नौ पदार्थ। सात में से आस्रव में से दो निकाले। पुण्य और पाप। नौ पदार्थ। भिन्न-भिन्न नौ हैं। पुण्य, पाप नहीं, पाप, पुण्य नहीं, आस्रव दो मिलकर भिन्न है, बन्ध भिन्न है, अजीव भिन्न है, कर्म भिन्न है, आत्मा ज्ञायक भिन्न है, संवर-निर्जरा पर्याय अपनी शुद्धि, वह भिन्न है। पुण्य-पाप के परिणाम से, संवर-निर्जरा आत्मा के स्वभाव से उत्पन्न हो, वह भिन्न है। ऐसे नौ की नौ रूप भेदरूप श्रद्धान करना उसका नाम शुभराग, शुभ विकल्प, व्यवहार समकित कहते हैं। किसको?

'**जीव द्रव्यं च शुद्धं च, सार्थं शुद्ध दर्शनं।**' जिसके साथ जो ज्ञायक चिदानन्द निर्विकल्प शुद्ध आत्मा, वह राग की क्रिया करनेवाला नहीं, दया, दान आदि व्यवहार विकल्प का कर्तृत्व नहीं। सात तत्त्व द्रव्य आदि कहे, विकल्प, उसका भी कर्तृत्व जिसमें नहीं है। ऐसे अकेला आत्मा '**सार्थं शुद्ध**' यथार्थ '**शुद्ध दर्शनं।**' उसको यथार्थ शुद्ध दर्शन अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया? यह तो वहाँ बहुत परिचय में आते थे। सम्प्रदाय में आते थे या नहीं? क्या कहना?

देखो! एक गाथा में दो लिया है। समझ में आया? पहले में व्यवहार लिया। दूसरे में निश्चय लिया। (जिसको निश्चय हो), उसको नौ तत्त्व आदि का व्यवहार समकित कहने में आता है। सम्यक्। दो प्रकार का सम्यग्दर्शन का कथन है। सम्यग्दर्शन दो नहीं है। कथन में दो है। तो एक प्रकार पहले लिया, दूसरा प्रकार दूसरे पद में लिया। जिसको जीवद्रव्य शुद्धं ज्ञायक अखण्ड निर्विकल्प राग—विकल्प का कर्ता नहीं, देह की क्रिया का कर्ता नहीं। ये तो सात तत्त्व में आ गया। लेकिन यहाँ निर्विकल्प आत्मा में शुद्ध आत्मा का अनुभवपूर्वक प्रतीति, भान होना, वह यथार्थ शुद्ध दर्शन है। यथार्थ कहो या निश्चय कहो। '**सार्थं**' है न? '**सार्थं**'। यथार्थ कहो या निश्चय कहो। जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन होता

है, उसको ऐसा व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है। निश्चय बिना का अकेला व्यवहार पुण्यबन्ध का कारण है। उसमें कोई व्यवहार समकित का आरोप भी देने में आता नहीं। समझ में आया? अभी सम्यग्दर्शन किसको कहते हैं, (उसकी) खबर नहीं और कहाँ से व्रत, नियम और क्रियाकाण्ड आ गया? वह कहते हैं, देखो! २३७ में आया न? सार-सार लेते हैं। २४५। २४५ है न?

अनृतं अचेत उत्पादं, मिथ्या माया लोकरंजन।
पाषंडी मूढ विश्वासं, नरये ते पतंति नरा॥२४५॥

कड़क भाषा है, सेठ! तारणस्वामी कड़क हैं, कड़क। यथार्थ हो, वह तो कहना ही पड़े। उसमें क्या? लोक में क्या... ? इसलिए कहते हैं, देखो! लोकरंजन। लोगों का रंजन करने में अनुकूलता पड़े ऐसी बात करना, वह पाखण्डी मूढ़ है। '**नरये ते पतंति नरा।**' वह नरक में जाएगा। लोकरंजन-लोगों को अनुकूल (पड़े, ऐसा कहना कि), दया, दान, भक्ति, व्रत, तप वह भी एक धर्म है। वह तो विकल्प है। वह भी धर्म है, ऐसा मानते हैं, मनाते हैं, लोगों को प्रसन्न रखते हैं, वह '**नरये ते पतंति**' नरक में जाएगा। क्योंकि भगवान के मार्ग से विरुद्ध द्रोह करते हैं। समझ में आया? वह बाद में आयेगा। २४७ में आयेगा। समझ में आया? है शब्द? डालचन्दजी! है? देखो! '**अनृतं**' बाद में आयेगा, अभी २४५ की व्याख्या चलती है।

'**अनृतं**' मिथ्यात्व, अज्ञान को ही उत्पन्न करनेवाले हैं। मिथ्याश्रद्धा, उल्टी मान्यता। सर्वज्ञ वीतराग परमेश्वर से एक भी शब्द का विरोध कहे, एक अक्षर का लोकन्यास से करे, ऐसा मिथ्यात्व अज्ञान को उत्पन्न करनेवाले। और स्वयं मिथ्यादृष्टि, मायाचार और लोगों को रंजायमान करने में लगे रहते हैं। सेठ को, सबको अनुकूल लगाना। पैसेवाले हो, भैया! तुम तो पैसे खर्च करो। तुम्हें उसमें धर्म है। श्रावक का पूजा, दान में धर्म है। मुनियों का दूसरा धर्म है। ऐसे दुनिया को रंजन करनेवाला '**नरये ते पतंति**' नरक में जाएगा। डालचन्दजी! लिखा है '**नरये ते पंतति**'? मानव नरक में पड़ता है। पंचेन्द्रिय का महादुःख है। लोगों का रंजन करे, परन्तु भगवान की आज्ञा से विरुद्ध होता है, उसकी खबर नहीं। सबको भला मानना और सबको अच्छा कहना। सेठ को मक्खन लगाना। मक्खन लगाना समझते हो? चापलूसी। तुम बड़ हो, बड़े धर्मी हो। धूल में भी भान नहीं है। पैसेवाला हो

गया तो क्या धर्म हो गया ? पाँच-पचास लाख खर्च करे तो धर्म हो गया ? वह तो धूल है। वह तो कदाचित् राग मन्द किया हो तो पुण्य है। धर्म-बर्म है नहीं। मन्दिर दो बनाया तो, ओहोहो ! तुम बड़े धर्मी हो।

एक पण्डित ने कहा था। राजकोट का ढाई लाख का मन्दिर हुआ न ? (संवत्) २००६ की साल में। एक पण्डित आया था। बड़ा महोत्सव था। पाँच-छह हजार लोग आये थे। राजकोट में मन्दिर हुआ था। एक पण्डित ने हमारे सेठ को कहा, तुम्हारे दादा को-नानालालभाई (को)। नानालालभाई को कहा था, सेठ ! ... इतना खर्च (किया), सवा लाख तो उसने खर्च किया, सवा लाख, तुम सात-आठ भव में मोक्ष जाओगे। सेठ ने कहा, हमारे महाराज ऐसा नहीं कहते हैं। हम ऐसा नहीं मानते। हमारे नानालालभाई थे न ? यह मोहनभाई का पुत्र है, उसका बड़ा भाई। नानालालभाई को एक पण्डित ने कहा, २००६ की साल। बड़ा महोत्सव, ढाई लाख का नया दिगम्बर का मन्दिर (बना)। यहाँ काठियावाड़ में तो दिगम्बर मन्दिर था ही नहीं। एक वहाँ भावनगर था और एक जूनागढ़ था। ओहो ! ऊपर सुवर्ण कलश। सेठ ! तुम सात-आठ भव में मोक्ष जाओगे। हमारे महाराज ना कहते हैं। उससे मोक्ष हम तो नहीं मानते। हमारा जितना शुभभाव हुआ हो, उतना हमको पुण्य बँध जाएगा। सेठ ! जितना हमारा राग मन्द हुआ हो, (उतना पुण्य बन्ध है)। कान्तिभाई है न ? उसके पिताजी थे। तीनों भाई बहुत यहाँ (आते थे)। एक ही वर्ष में तीनों चल बसे। हमारे यहाँ... था। मोहनभाई उसके पिताजी तो हमारे साथ में थे। बहुत प्रेम था। बहुत प्रेमी था। साथ में रहते हैं। तुम भी साथ में थे। साथ में थे। उसने कहा कि, नहीं। लाख, सवा लाख खर्च किया तो क्या आठ भव में मोक्ष जाते हैं ? कौन कहता है ?

ऐसा मूढ़ मिथ्यादृष्टि दुनिया को रंजन कराने को ऐसे पाँच लाख-दस लाख खर्चे तो तुम्हारे धर्म होगा, (ऐसा) लोकरंजन करके भगवान की आज्ञा का लोप करते हैं। समझ में आया ? पण्डितजी ! कड़क बात है, हों ! वह तो शास्त्र में है।

मुमुक्षु : कड़क नहीं है, सच्ची है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी है, ऐसा है।

'**पाषंडी मूढ विश्वासं**' देखो ! पाखण्डी साधुओं का विश्वास करते हैं। ऐसी

विपरीत मान्यता करनेवाला कोई भी गृहस्थ हो, उसका विश्वास करते हैं। देखो! उसका विश्वास करते हैं विपरीत मान्यता कहनेवाला। पुण्य में धर्म है, क्रिया करते-करते तुम्हें धर्म हो जाएगा, ऐसा यदि कोई मनाता है और ऐसा विश्वास करता है, ऐसा विश्वास करनेवाला मानव नरक में जाता है।

मुमुक्षु : विश्वास करनेवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या है? **'पाषंडी मूढ विश्वासं, नरय ते पतंति नरा।'** डालचन्दजी! पहले समझना। पहले चीज़ क्या है? महान प्रभु का मार्ग, सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ उससे एक विरुद्ध... अभी तो बहुत विरोध विरोध (चलता है)। खबर भी नहीं है कि विरोध करते हैं या नहीं। समझ में आया?

इसलिए यहाँ लिया है, ऐसी मिथ्या माया, मिथ्या श्रद्धा। अन्दर मायाचार, दुनिया को धर्म मनाने अन्दर में कुछ माने, बाहर में कुछ माने और लोक का रंजन। लोकरंजनं। **'पाषंडी मूढ विश्वासं'** ऐसा का कोई भी विश्वास करे, वह भी धर्म का कहनेवाला है, वह भी धर्मी है, वह भी एक विद्वान है, ऐसा मानकर उसका विश्वास करे, **'नरये ते पतंति'** विश्वास करनेवाला नरक में जाएगा। है भैया उसमें? २४६।

पाषंडी वचन विश्वासं, समय मिथ्या प्रकाशनं।
जिन द्रोही दुर्बुद्धि, ये स्थानं तस्य न जायते॥२४६॥

क्या कहा? देखो! अपने को खबर नहीं तो दूसरे में क्या खबर है उसको कि क्या चीज़ है। तो कहते हैं, पाखण्डी जीवों के वचनों का विश्वास करना। भान है नहीं और जहाँ-तहाँ धर्म के नाम पर विपरीत बात चलाये, ऐसा साधु हो या गृहस्थ हो, कोई भी। साधु का नाम पाखण्डी ... सच्चे साधु हो तो भी उसे पाखण्डी कहे। पाखण्डी अर्थात् ... ऐसा नहीं। समयसार में आता है।

यहाँ कहते हैं, गृहस्थ हो या विद्वान हो या त्यागी नाम धरानेवाला हो या साधु हो। पाखण्डी साधुओं के वचनों का विश्वास करना, ये महा जिनद्रोही है। ऐसा विश्वास करनेवाला भगवान के मार्ग का द्रोही है। है? जिनद्रोही। वह दुर्बुद्धि है। उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं है, अज्ञान बुद्धि है। दुर्बुद्धि कहो या अज्ञान हो। मिथ्या आगम के मत का

प्रकाश करना है। देखो! '**समय मिथ्या प्रकाशनं**' समय अर्थात् आगम। आगम का मिथ्या प्रकाश। वास्तविक आगम क्या है, उसका अर्थ क्या है, समझे बिना अपनी कल्पना से उल्टा आगम का अर्थ चला दे और मिथ्या आगम की परम्परा चला दे। जिनद्रोही ऐसे पाखण्डी साधु जिनेन्द्र के अनेकान्त मत के शत्रु हैं। लिखा है? इसमें लिखा है। भैया! लिखा है उसमें? शीतलप्रसाद ने लिखा है, हों! शीतलप्रसाद हुए हैं न? एक ब्रह्मचारी।

मुमुक्षु : उसको तो मालूम है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : मैं तो दूसरे को समझाने को कहता था। समझ में आया? समझ में आया कि नहीं? शीतलप्रसाद दिगम्बर ब्रह्मचारी हुए हैं न। उन्होंने यह अर्थ लिखा है। है तारणस्वामी का पाठ। उसमें है, पाठ में ही है।

'**जिन द्रोही दुर्बुद्धि**' जिसको भगवान आत्मा भिन्न, राग से भिन्न, आस्रव से भिन्न, जड़ की पर्याय से भिन्न (उसका) भान नहीं है और भगवान के आगम के नाम पर चढ़ा दे कि आगम ऐसा कहते हैं, शास्त्र ऐसा कहते हैं, ऐसा जिनद्रोही और मिथ्या दुष्ट बुद्धि रखनेवाला '**स्थानं तस्य न जायते**' क्या (कहते हैं)? उसके स्थान में न जाना। है न? '**स्थानं तस्य न जायते।**' भान नहीं है, जहाँ-तहाँ जाना।

मुमुक्षु : बिना भान के गड्ढे में जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है। है या नहीं? भैया! '**स्थानं तस्य न जायते**' जिसकी प्ररूपणा, श्रद्धा विरुद्ध है, आगम से विरुद्ध है.. समझे? उसके वचन का विश्वास करना या मिथ्या प्रकाशन करते हैं, उसका '**स्थानं तस्य न जायते।**' ऐसे पाखण्डी साधु के स्थान में जाना भी उचित नहीं। उसका संग करना नहीं, शोहबत करना नहीं, उसकी विपरीत रीत में चढ़ा देगा। उसकी दृष्टि विपरीत है। आगम का अर्थ वह विपरीत करते हैं, उसे विपरीत रास्ते पर चढ़ा देगा। समझ में आया? बहुत लिखा है। '**स्थानं तस्य न जायते।**'

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वह तो ईश्वरचन्दजी स्पष्ट कराते हैं। भैया! ... नहीं है, ऐसी वस्तु की स्थिति है। वस्तु की मर्यादा है। भगवान त्रिलोकनाथ

अरिहन्त, गणधर जो कहे उसके नाम पर चढ़ाकर उल्टा चलाना, कहते हैं कि वह तो '**नरय ते पतंति।**' और उसका विश्वास करनेवाला भी नरक में जाएगा। और '**स्थानं तस्य न जायते**' उसका संग करना नहीं। धर्मीजीव को ऐसे संग में, परिचय में नहीं जाना। नहीं तो वह उल्टे रास्ते पर चढ़ा देगा। समझ में आया? अब, २४७।

पाषंडी कुमति अज्ञानी, कुलिंगी जिन उक्तं लोपनं।
जिनलिंगी मिश्रेन य, जिन द्रोही ज्ञान लोपनं॥२४७॥

'**मिश्रेन**' शब्द है? '**मिश्रेन**' शब्द है न? जिनलिंगी के साथ अपने को मिलाने को, जिनलिंगी दिखाने के लिये। आप लोग, पण्डित लोग कहते हैं, ... नहीं? बुद्धिवाला है, दूसरे से कुछ अधिक बुद्धिवाला है। तो थोड़ा उसे यथार्थ समझना चाहिए, वाँचन करना चाहिए। एक-एक शब्द में गाथा में क्या मूल में कहा है, ऐसे यथार्थ न चले तो तारणस्वामी का ही द्रोही हो जाता है। तारणस्वामी के नाम से चलावे और हो तारणस्वामी का दूसरा कथन और माने दूसरा। डालचन्दजी! ये जिनद्रोही हुआ, साधु द्रोही हुआ, गृहस्थी समकिती का द्रोही होगा। समझ में आया?

पाखण्डी साधु कुमति और कुश्रुत का धारी है। सम्यग्ज्ञान है नहीं। सम्यक् श्रुत है नहीं। उल्टा कल्पना और तर्क अपना लगाकर—कुशास्त्र है। मिथ्या ... है, भेष भी दूसरा है। भेष भी दूसरा नाम कल्पना दूसरी है। जिन के स्वरूप को लोपनेवाला है। वीतराग परमात्मा, उसका निश्चय सत्य मार्ग उसका लोपनेवाला है। जो जिनलिंगी अपने में थोड़ा मिलाकर, थोड़ा ऐसा, थोड़ा ऐसा (कहता है, वह) जिन भगवान का द्रोही होता है। सम्यग्ज्ञान को छिपा देनेवाला है। लोप का अर्थ। इसलिए उसका संग करना नहीं। उसकी पहले परीक्षा करनी चाहिए। कहो, समझ में आया? २४८।

पाषंडी उक्त मिथ्यात्वं, वचनं विश्वास क्रियते।
त्यक्तते शुद्ध दृष्टी, दर्शनं मल विमुक्तयं॥२४८॥

पाखण्डी भेषी साधुओं द्वारा कहे हुए मिथ्यात्व पोषक वचनों का विश्वास किये जाने पर शुद्ध आत्मिक सुदृष्टि का त्याग हो जाता है। यहाँ तो साधु का नाम है, परन्तु कोई भी गृहस्थ हो, अज्ञानी हो,...

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : बस, '**उक्त मिथ्यात्वं।**' वही भाषा उसमें थी न? पाखण्डी मिथ्यात्व।

परन्तु विपरीत मान्यतावाला। वास्तविक तत्त्व भगवान सर्वज्ञदेव कहे, एक रजकण की भी क्रिया आत्मा कर सकता नहीं। एक राग दया, दान का उसका कर्तृत्व मानना, वह भी मिथ्यात्व है। उससे विरुद्ध कहनेवाला अज्ञानी मिथ्यात्व का पोषक है। '**वचनं विश्वास**' उसके वचन का विश्वास करना,.. समझ में आया? '**तस्य ये सुदृष्टि**' सुदृष्टि हो तो भी नाश हो जाती है। समझ में आया? सच्ची दृष्टि रहती नहीं। '**दर्शनं मल विमुक्तं**' तो कैसा करना? उसको मलरहित सम्यग्दर्शन नहीं रहता। ऐसी श्रद्धा-विपरीत माननेवाले की श्रद्धा करे, बहुमान करे, भक्ति करे तो उसको सच्चा सम्यग्दर्शन रह सकता नहीं।

मुमुक्षु : कृपा से फल हो जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी कृपा से फल होता नहीं। क्या कृपा से फल होता है? २५०।

ज्ञानं तत्त्वानि वेदंते, शुद्ध समय प्रकाशकं।
शुद्धात्मनं तीर्थ शुद्धं, ज्ञानं ज्ञान प्रयोजनं॥२५०॥

देखो! '**ज्ञानं तत्त्वानि वेदंते**' जीवादि सात तत्त्वों का ज्ञान करके आत्मा का यथार्थ अन्दर अनुभव करना-वेदन करना। सात का ज्ञान सम्यक् चैतन्य की ओर झुकने से होता है। और उससे ज्ञान का वेदन करना, अनुभव करना। निर्विकल्प शान्ति, सम्यग्दर्शन का वेदन करना। समझ में आया? और '**शुद्ध समय प्रकाशकं।**' शुद्ध निर्दोष ... प्रकाशक हो। समझ में आया? शुद्ध निर्दोष पदार्थ कहते हैं और शुद्ध तत्त्व का प्रकाश कहते हैं। '**शुद्धात्मनं तीर्थ**' ऐसा शुद्ध तीर्थस्वरूप शुद्धात्मा का झलकानेवाला हो। ऐसे ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। शुद्ध तीर्थस्वरूप आत्मा है। बाह्य तीर्थ व्यवहार है। समझ में आया? बाह्य तीर्थ व्यवहार है। ... मोक्ष का कारण है और उससे क्रम से मोक्ष होगा, ऐसा नहीं है। समझ में आया? लोग कहते हैं न, जाओ भैया! सम्मेदशिखर का दर्शन करो, भव का नाश हो जाएगा। शत्रुंजय का, गिरनार का। भगवान ना कहते हैं कि हम ऐसा कहते नहीं। हमारी

वाणी में ऐसा आया नहीं। शुभबन्ध होता है, पुण्यबन्ध का कारण तीव्र कषाय से बचने को ऐसा शुभभाव ज्ञानी को भी होता है। परन्तु शुद्ध तीर्थ अपने स्वरूप का झलकानेवाला ज्ञान, चिदानन्द ज्ञान, ज्ञायकस्वभाव का प्रकाश करनेवाला, वही ज्ञान शुद्ध तीर्थ है। समझ में आया?

व्यवहार है, व्यवहार के स्थान में व्यवहार है, नहीं है—ऐसा नहीं। अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान, उसके भान में जब स्थिर हो सकते नहीं; भान होने पर भी, भक्ति, पूजा, तीर्थ, यात्रा होती है। परन्तु उसकी मर्यादा, मर्यादा-उसकी सीमा राग की मन्दता होना, पुण्यबन्ध का होना, उतनी उसकी सीमा है। उससे आगे जाकर जो आत्मा का विशेष लाभ बताते हैं, उसमें लाभ होगा नहीं। मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? दृष्टि का ठिकाना नहीं। दृष्टि जहाँ सत्य नहीं है, वहाँ व्रत और नियम कोई भी सच्चा होता नहीं। समझ में आया?

ज्ञान से ज्ञान की उन्नति का ही प्रयोजन हो, वही ज्ञानाचार है। देखो! क्या कहते हैं? जो सम्यग्ज्ञान में सात तत्त्व का वेदन हो, शुद्ध शास्त्र का प्रकाशन हो, शुद्धात्मा तीर्थ शुद्ध को झलकानेवाला हो और '**ज्ञानं ज्ञान प्रयोजन।**' जिस ज्ञान में अपना केवलज्ञान प्रगट करना ही प्रयोजन हो। समझ में आया? अपने सम्यग्ज्ञान से केवलज्ञान प्रगट करना, वह प्रयोजन है। कोई दुनिया की इज्जत लेनी या दुनिया प्रसन्न हो, ऐसा प्रयोजन है नहीं। उसके ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? '**ज्ञानं ज्ञान प्रयोजन**' ज्ञान की उन्नति का ही ज्ञान से प्रयोजन हो। दूसरा कोई प्रयोजन नहीं। अपना शुद्ध सम्यग्ज्ञान ऐसा होता है कि ज्ञान से ज्ञान की बढ़वारी-वृद्धि होती-होती केवलज्ञान हो जाए। दूसरा कोई काम नहीं है। ज्ञान से कुछ पुण्य बँध जाए, या दुनिया में इज्जत मिल जाए, दुनिया में बड़ा कहने में आये, ऐसी भावना हो तो सम्यग्ज्ञान है ही नहीं। ज्ञान का ज्ञान से प्रयोजन हो। समझ में आया? २५० (हुई)। २५१ लो।

ज्ञानेन ज्ञानमालंबनं, पंच दिप्ती परस्थितं।
उत्पन्नं केवलज्ञानं, सार्धं शुद्धं दिष्टितं॥२५१॥

सम्यग्ज्ञान श्रुतज्ञान के द्वारा। सम्यग्ज्ञान आत्मज्ञान, हों! शुद्ध। आत्मज्ञान को दृढ़ करना ही चाहिए। शुद्ध सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मज्ञान को दृढ़ करना चाहिए। अपना आत्मा

निर्विकल्प शुद्ध है, उसकी श्रद्धा और ज्ञान को सम्यग्ज्ञान द्वारा दृढ़ करना चाहिए। पंच प्रकार ज्ञानों के भीतर श्रेष्ठरूप से स्थित जो केवलज्ञान। पाँच ज्ञान में भी एक केवलज्ञान। केवलज्ञान प्रगट हो जाए, वह बात ज्ञान में आनी चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

साथ ही शुद्ध आत्मिक प्रत्यक्ष दर्शन हो जाए, उसका नाम ज्ञान कहने में आता है। '**ज्ञानेन ज्ञानमालंबनं।**' देखो! अकेला सम्यग्ज्ञान चैतन्य निर्मल विकल्प रहित जो सम्यग्दर्शन में ज्ञान हुआ, उसके आलम्बन से केवलज्ञान प्रगट हो और पाँच ज्ञान में उसकी अधिकता हो, उसका नाम शुद्ध दृष्टि कहने में आता है। अथवा शुद्ध आत्मिक प्रत्यक्ष दर्शन हो जाए जिस ज्ञान से, उस ज्ञान का नाम ज्ञान है। दुनिया को समझाना आये या नहीं आये, उसके साथ सम्बन्ध है नहीं। समझ में आया? हजारों लोगों में बोलने आता है, समझता है, क्या है? भाषा जड़ की है, आत्मा को क्या है उसमें? उसका सम्यग्ज्ञान अन्दर में अपने ज्ञान की पूर्णता करने में प्रयोजन हो, उसके ज्ञान को ज्ञान कहने में आता है। सम्यग्ज्ञानी हो, उसे कुछ बोलना भी नहीं आता हो। समझे? ऐसा है। मंडुक-मेंढ़क। मेंढ़क समकिती होता है। और जैन साधु होकर मिथ्यादृष्टि होता है। अनन्त बार नौवीं ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रैवेयक उपजायो, पै आत्मज्ञान बिन लेश सुख न पायो।' सम्यग्दर्शन का भान नहीं और मुनिव्रत अन्दर अनन्त बार धारे, उससे कोई आत्मा का लाभ है नहीं। और मेंढ़क है, चिड़िया... क्या कहते हैं? चकला, वह भी भगवान के समवसरण में सम्यग्दृष्टि होता है। सुना है? सम्यग्दृष्टि यहाँ कहते हैं ऐसा।

मुमुक्षु : साहब! वैसा ज्ञान कहाँ लेने जाना?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान आत्मा में है। कहाँ लेने जाना है? जयचन्दभाई! ज्ञान बाहर से नहीं आता, ऐसा कहते हैं। अन्दर भरा है। केवलज्ञान का कन्द प्रभु आत्मा है। ज्ञान बाहर से आता है? पुस्तक पन्नों में से आता है? आहाहा! विश्वास नहीं है, विश्वास। समझ में आया?

आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' मेरे स्वरूप में सिद्धपद है। मैं ज्ञान का पूर्ण भण्डार हूँ। ऐसा अनुभव करना सम्यग्दर्शन में, उससे ज्ञान की सम्यक्ता प्रगट होती है। बाह्य क्रियाकाण्ड प्रवृत्ति से कोई सम्यग्ज्ञान होता नहीं। समझ में आया?

आत्मज्ञान से केवलज्ञान लेना, वह उसका प्रयोजन है। दूसरा कोई प्रयोजन है नहीं। समझ में आया? अवधि, मन:पर्यय हो या नहीं हो, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। अन्तर में मति-श्रुत सम्यग्ज्ञान हुआ सम्यग्दर्शनपूर्वक, तो उसका प्रयोजन केवलज्ञान ही है। दूसरा कोई प्रयोजन है ही नहीं। स्वर्ग मिलेगा, ऐसा मिलेगा, तीर्थंकर गोत्र बाँधेगा, ये प्रयोजन नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बीच में विकल्प आ जाए और बँध जाए, परन्तु ज्ञानी का वह प्रयोजन नहीं है। ज्ञानी का सम्यग्दृष्टि का प्रयोजन अपने ज्ञान से ज्ञान की वृद्धि होकर केवलज्ञान हो जाए, बस! यह सम्यग्दृष्टि का प्रयोजन और हेतु है, दूसरा कोई हेतु है नहीं। समझ में आया? २५२। देखो आया। कल कहा था न? आँख की बात कहीं (आती) है।

ज्ञानं लोचनं भव्यस्य, जिन उक्तं सार्थं ध्रुवं।
सुयं तत्त्वानी विज्ञानं, सुदृष्टि समाचरतु॥२५२॥

अहो! भव्य जीव की आँख तो ज्ञान है। देखो! यह आँख नहीं। ... नहीं। आत्मा ज्ञानमूर्ति परमानन्द का जिस ज्ञान से भान हो, वह ज्ञानलोचन भव्यजीव को होता है। यह भव्यजीव की आँख है। समझ में आया? आहा! देखो! भव्य जीव की आँख ज्ञान है। जो यथार्थ है, निश्चल है। जो ज्ञान यथार्थ है और निश्चल है। '**सार्थं**' (अर्थात्) यथार्थ। '**ध्रुवं**' (अर्थात्) निश्चल। '**जिन उक्तं**' ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है। जिसकी ज्ञान सम्यक् चैतन्य की आँख प्रगट हो गयी, वही उसकी आँख है-वही उसका ज्ञान है। ऐसा त्रिलोकनाथ जैन परमेश्वर ने कहा। दूसरा जानपना हो, न हो, संस्कृत, व्याकरण बोलना, ऐसा-वैसा (नहीं हो), परन्तु जिसको अन्दर सम्यग्ज्ञान नेत्र खुल गये हैं, उसको ज्ञान कहते हैं और उसकी आँख सम्यग्ज्ञान की आँख है। समझ में आया?

'**सुदृष्टि**' सम्यग्दृष्टि जीव श्रुतज्ञान के द्वारा तत्त्वों का विशेष ज्ञान प्राप्त करे। सम्यग्दृष्टि जीव तो अपने भावश्रुतज्ञान द्वारा, भावश्रुतज्ञान द्वारा सम्यग्दर्शन की प्रतीत में जो सारा आत्मा आया है, उसमें भावश्रुत निर्मल द्वारा सर्व तत्त्वों का विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। उसको सम्यग्ज्ञान कहते हैं। कहो, समझ में आया? बीच में वह बात तो आ गयी, २५४-२५५ (गाथा की)। आचरण की बात आयी न? थोड़ी यहाँ पात्रदान की बात लेनी है। २६२। २६२, लो।

ओमकारं च वेदंते, ह्रीकार सुत उच्यते।
अचक्षुदर्शन जोयंते, मध्य पात्रं सदा बुधै॥२६२॥

... सत्य तत्त्वं वेदंते, ऐसा लिया है। यहाँ '**ओमकारं च वेदंते**' आया है। बात तो अन्दर भावश्रुतज्ञान वेदन की है। धर्मी जीव तो अपने आत्मा को अन्दर अचक्षु द्वारा देखते हैं। समझ में आया? श्रावक ओमकार का अनुभव करते हैं। ओमकार शब्द का नहीं, हों! विकल्प नहीं। ओम में कहा है, ऐसा आत्मा का भाव। और '**ह्रीकार**' बीजाक्षर का उच्चरण करते हैं। अन्दर आत्मा केवलज्ञान का बीज है, उसका ज्ञान करते हैं। और अचक्षु दर्शन द्वारा आत्मा को देखते हैं। उनको ही आचार्य ने सदा मध्यम पात्र कहा। देखो! आहार लेने में मध्यम पात्र वह है। समझ में आया? जघन्य चौथा गुणस्थान है न। मध्यम है, और उत्कृष्टि मुनि का है।

अचक्षुदर्शनं। यहाँ श्रावकाचार है या नहीं? अपने आत्मा को अचक्षुदर्शन से देखते हैं। ओहो! आता है न परमात्मप्रकाश में? भाई! परमात्मप्रकाश में। अचक्षुदर्शन। ये सब शब्द जिनागम के ही हैं। परात्मप्रकाश में योगीन्द्रदेव ने कहा है। आत्मा को अचक्षुदर्शन द्वारा देखते हैं। खबर है? नहीं खबर। हाँ तो कहे, क्या करे। पढ़ने का समय नहीं मिलता, (धन्धे) के कारण। कहो, समझ में आया? भाई! परमात्मप्रकाश में आता है न? परमात्मप्रकाश में। शिष्य ने प्रश्न किया, अचक्षुदर्शन क्या है? अचक्षुदर्शन तो अभव्य को भी होता है। अचक्षुदर्शन यदि लो तो निगोद को भी अचक्षुदर्शन है, अभव्य को भी अचक्षुदर्शन है। समझ में आया? इसलिए यह गाथा ली है।

अचक्षुदर्शन क्या? अचक्षुदर्शन तो अभवी को अनादि से है। निगोद को भी अचक्षुदर्शन है। अचक्षुदर्शन बिना का कोई प्राणी होता ही नहीं। परन्तु यह अचक्षुदर्शन दूसरा है। इस आँख के बिना अन्तर सम्यग्ज्ञान से आत्मा को देखना उसका नाम अचक्षुदर्शन कहने में आया है। पण्डितजी! कोई-कोई गाथा ऐसी है। खास लेने को ख्याल आवे कि कैसा अर्थ भरा है उसमें। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : फिर से कहते हैं। ऐसा कहते हैं कि प्रभु कहते हैं कि भाई! तेरा

प्रभुत्व स्वभाव अन्दर अनन्त गुण का भण्डार पड़ा है। उसका अन्तर ज्ञान, दर्शन, जिसमें ये चक्षु नहीं है, यह स्पर्श नहीं, कोई इन्द्रिय नहीं। अतीन्द्रिय ऐसे अचक्षुदर्शन द्वारा आत्मा को देखना। समझ में आया? अन्दर अचक्षु अर्थात् ये चक्षु नहीं। सम्यग्दर्शन द्वारा आत्मा को देखना, सम्यक् लोचन द्वारा आत्मा को देखना, उसका नाम अचक्षुदर्शन से देखा— ऐसा कहने में आता है। मिथ्यादृष्टि को अचक्षुदर्शन है, उसमें क्या आया? चक्षु, अचक्षुदर्शन है न? वह तो अभव्यों को भी होता है, अनादि निगोद में भी है, अचक्षुदर्शन। फिर चौइन्द्रिय होता है, तब चक्षुदर्शन होता है। वह नहीं।

यहाँ तो अन्तर की आँख। पाँच इन्द्रिय भी नहीं, मन भी नहीं। पाँच इन्द्रिय नहीं, मन नहीं। समझ में आया? ऐसे अन्तर ज्ञान की पर्याय द्वारा आत्मा को देखना, अनुभवना, प्रतीत करना उसका नाम '**अचक्षुदर्शन जोयंते**' है। समझ में आया? देखते हैं। जोयते अर्थात् देखते हैं। कौन-सी आयी? २६६। थोड़ी २६६ लो। अविरति सम्यग्दृष्टि है न? २६६।

मिथ्या त्रिविध न दिष्टंते, सल्य त्रय निरोधनं।
सुयं च शुद्ध द्रव्यार्थ, अविरत सम्यक्दृष्टितं॥२६६॥

अविरत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थानवाला। यहाँ पात्र गिनना है न? तो पात्र कैसा है अविरत सम्यग्दृष्टि? उसका लक्षण बताया। अविरत सम्यग्दृष्टि। अन्तर में अभी आसक्ति का त्याग नहीं है। अन्दर स्वरूप की स्थिरता-चारित्र आदि नहीं है। परन्तु '**मिथ्या त्रिविध न दिष्टंते**' जिसमें मिथ्यात्वभाव, मिश्रभाव, समकितमोहनीयभाव है नहीं। मिथ्यात्व की तीन प्रकृति है। उसका भाव भी आत्मा में तीन प्रकार का होता है। मिथ्यात्व, मिश्र और समकित। ये तीन प्रकार का भाव सम्यग्दृष्टि को होता नहीं। यहाँ तो उत्कृष्ट बात करते हैं। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को.. देखो! यह पंचम काल की बात करते हैं। पंचम काल की बात है न, यह कहाँ चतुर्थ काल की बात है।... समकितमोहनीय थोड़ा है, लेकिन दृष्टि में देखते नहीं। त्रिकाल ज्ञायक शुद्ध अनाकुल आनन्द ज्ञान का पिण्ड निर्मल, ऐसा सम्यग्दृष्टि को तीन मिथ्यात्व से रहित आत्मा दिखता है।

'**सल्य त्रय निरोधनं**' समकिती को तीन प्रकार का ... है। मिथ्यादर्शन है नहीं, मिथ्याश्रद्धा उसे है नहीं, मिथ्यात्व, निदान शल्य है नहीं, माया शल्य है नहीं। समझ में आया? निःशल्यो व्रती। आता है या नहीं? तत्त्वार्थ सूत्र में आता है। निःशल्यो व्रती। मिथ्यात्व है, माया शल्य है, तबतक व्रत-फ्रत कहाँ से आया? दृष्टि में तो खबर नहीं है कि आत्मा क्या, पुण्य क्या, दया क्या, ... क्या, जड़ क्या, परिपूर्ण क्या, कैसे ज्ञान से क्या प्राप्त होता है, खबर नहीं। उसको व्रत-फ्रत कहाँ से आया? क्रिया कहाँ से आयी यथार्थ ज्ञान बिना?

कहते हैं, तीन शल्य रहित। निःशल्यो व्रती। मिथ्याशल्य, निदानशल्य और मायाशल्य रहित हो तो व्रतभाव पंचम गुणस्थान आता है। नहीं तो पंचम गुणस्थान आता नहीं। ओहोहो! यह श्रावकाचार की बात चलती है। पंचम गुणस्थान का आचार कैसा है, यह चलता है। उसमें तीन प्रकार का शल्य नहीं होता है। मिथ्यात्व का तीन भाव-समकित मोहनीय, मिश्र, '**सुयं च शुद्ध द्रव्यार्थं।**'

'**शल्य त्रय निरोधनं**' कहा न? रोकता है। और श्रुतज्ञानी है। सम्यग्दृष्टि श्रुतज्ञानी है। भावज्ञानी है। भाव आत्मा का ज्ञान और भास हुआ है, चिदानन्द (हूँ)। ऐसे भावश्रुतज्ञान को सम्यग्दृष्टि कहते हैं। भले अव्रती हो। समझ में आया? अविरत लेते हैं न? देखो! मूल में लिया है। अविरत सम्यग्दृष्टि का भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ने लक्षण कहा, वह लक्षण यहाँ कहने में आता है। वह शास्त्र में बहुत चलता है। शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को समझता है। द्रव्यार्थिक है या नहीं? सम्यग्दृष्टि जीव शुद्ध द्रव्यार्थिकनय आत्मा एकरूप द्रव्यार्थिक-द्रव्य जिसका अर्थ-प्रयोजन है, ऐसे ज्ञान से आत्मा कैसा है, शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से द्रव्यदृष्टि से आत्मा को जानते हैं। समझ में आया? एक समय की पर्याय, दया, दान का विकल्प और निमित्त, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय नहीं है। वह पर्यायनय का विषय है, व्यवहारनय का विषय है। उसको ज्ञानी जानते हैं। आदरणीय द्रव्यार्थिकनय का विषय (है)। द्रव्यार्थिक किसे कहना और विषय किसे कहना? क्या होगा?

शुद्ध द्रव्यार्थिक कहा न? देखो न! शुद्ध द्रव्य अर्थ। जिसको शुद्ध द्रव्य प्रयोजन है लक्ष्य में। फिर द्रव्यार्थिकनय कहा। अर्थी। अर्थी अर्थात् प्रयोजन। एक भगवान परिपूर्ण

आत्मा द्रव्यदृष्टि में आता है, द्रव्यार्थिकनय का विषय है, वही सम्यग्दृष्टि का प्रयोजन है। समझ में आया? कहाँ गयी पर्याय? जाये कहाँ? होती है, वह व्यवहार से जाननेलायक है, आदरनेलायक नहीं है। सम्यग्दृष्टि को अपनी पर्याय निर्मल हो, वह भी आदरणीय नहीं। क्योंकि पर्याय में से निर्मल पर्याय होती नहीं। समझ में आया? पर्याय कौन और द्रव्य कौन? (इसकी खबर नहीं)।

नियमसार में तो कहते हैं कि, सम्यग्दृष्टि को क्षायिक समकित पर्याय हुई, क्षायिक समकित। समझ में आया? परन्तु उसका प्रयोजन द्रव्य पर है, ध्रुव पर है। वह क्षायिक समकित को भी नियमसार की ५०वीं गाथा में परद्रव्य कहा है, हेय कहा है और परभाव कहा है। यह क्या आ गया? भाई! **'सुयं च शुद्ध द्रव्यार्थ'** शब्द पड़ा है न? सम्यग्दृष्टि का विषय द्रव्य है। त्रिकाल ज्ञायक अखण्डानन्द पूर्ण वस्तु। पर्याय में क्षायिक समकित हो, अरे..! मुनि हो छट्ठे गुणस्थान में तीन कषाय का अभाव होकर चारित्रदशा हो, वह भी सब व्यवहार में जाता है। क्या? समझ में आया? पण्डितजी!

राग, दया, दान, अट्ठाईस मूलगुण तो विकल्प है, वह तो व्यवहार में है ही। परन्तु अपनी पर्याय में जितनी शान्ति और चारित्र सम्यग्दर्शनपूर्वक प्रगट हुई, वह भी निश्चय दृष्टि के विषय के आगे वह व्यवहारनय के विषय में जाता है। बहुत समझना पड़ेगा। डालचन्दजी! ऐसे ऊपर-ऊपर से पैसा मिल गया, वैसे ये चीज़ नहीं मिलेगी। प्रयत्न करना पड़ेगा।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ मेहनत करता नहीं। उससे भी ज्यादा मेहनत करते हैं, कुछ मिलता नहीं। क्यों सेठ? आपसे अधिक मेहनत करनेवाले दूसरे बहुत हैं या नहीं? कुछ नहीं मिलता। आपको पैसा मिला तो क्या तुम्हारी मेहनत से मिला है?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कौन? मोही प्राणी राग किये बिना रहे नहीं। मोही प्राणी है तो राग हुए बिना रहता है उसको?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलना, नहीं मिलना कोई राग के पुरुषार्थ से मिलता नहीं।

समझ में आया ? देखो ! अविरत सम्यग्दृष्टि व्याख्या। उसको अविरत चौथा गुणस्थानवाला सम्यग्दृष्टि कहते हैं, जो मोक्षमार्ग की पहली सीढ़ी (है)। मोक्षमार्ग की पहली सीढ़ी।

'**सुयं च शुद्ध द्रव्यार्थ**' अपना द्रव्य परिपूर्ण जिसकी दृष्टि में है। अपनी प्रगट हुई निर्मल पर्याय सब व्यवहार है, हेय है; उपादेय नहीं, आदरणीय नहीं। परद्रव्य है, परभाव है। किस अपेक्षा से ? त्रिकाल द्रव्य पर दृष्टि देने से यह पर्याय प्रगट होती है। निर्मल पर्याय प्रगट हुई, उसमें से नयी निर्मल पर्याय नहीं आती। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म, भाई ! इसमें सूक्ष्म आया, द्रव्यार्थिक। सम्यग्दृष्टि का प्रयोजन एक शुद्ध द्रव्य (है)। पर्याय है सही, नहीं है—ऐसा नहीं, नास्ति नहीं है, ज्ञान करनेलायक है, जाननेलायक है। शुद्ध द्रव्य ज्ञायकस्वभाव एकरूप अखण्ड, जैसा केवलज्ञानी ने देखा, ऐसी प्रयोजन दृष्टि में द्रव्यार्थिकनय का विषय है। ऐसा माननेवाला, जाननेवाला, उसको '**अविरत सम्यग्दृष्टितं**' अविरत सम्यग्दृष्टि होता है। समझ में आया ? बहुत अच्छी बात कही है। ... अब ज्ञान में कथनशैली समझानी है। २७२।

पात्र दानं च शुद्धं, च कर्म क्षिपंति सदा बुद्धै।
जे नरा दान चिंतते, अविरत सम्यग्दृष्टितं॥२७२॥

एक और जगह आता है, '**अविचत**' आता है। २७८ में आता है, उसके साथ मिलान करना है। कथन पद्धति थोड़ी ऐसी है तो ध्यान रखना। चौथे गुणस्थानवाला अविरत सम्यग्दृष्टि गृहस्थाश्रम में रहता है, फिर भी कैसा होता है ?

सदा बुद्धिमानों के द्वारा दिया हुआ शुद्ध पात्र दान। ऐसा सम्यग्दृष्टि; बुद्धिमान अर्थात् सम्यग्दृष्टि, उसके द्वारा दिया हुआ शुद्ध पात्र दान। शुद्ध सम्यग्दर्शन सामने हो, मुनि हो, सम्यग्दृष्टि सच्चे ज्ञानी पात्र हो, दान देने में '**कर्म क्षिपंति**' वह पापकर्म का क्षय करता है, ऐसा लेना। निर्जरा करता है, ऐसा नहीं लेना। समझ में आया ? देखो ! २७८ में लिया है। २७८ है न ?

पात्र दानं च भावेन, मिथ्यादृष्टि च शुद्धये।
भावना शुद्ध संपूर्णं, दानं फलं स्वर्ग गामिनन॥२७८॥

शुद्ध तो एक अपेक्षा से शुभभाव है, उतनी बात है। समझ में आता है ? शुद्ध आत्मा

की भावना से (परिणत) सम्यग्दृष्टि को ... स्वर्गगमन है। मूल तो पुण्यबन्ध होता है। सम्यग्दृष्टि को, सच्चे सम्यग्दृष्टि को सन्तों को आहार देने का भाव पुण्यबन्ध का ही कारण है। संवर, निर्जरा का कारण नहीं। समझ में आया? पहले बात आ गयी है परसों। परद्रव्य चिन्त्ये। परद्रव्य चिन्तये आया है न? आ गया है। जितना परद्रव्य का चिन्तन, विकल्प, परद्रव्य अपेक्षा से आते हैं, सब पुण्यबन्ध का (कारण है)। व्यवहारधर्म पर लक्ष्य हो तो पुण्यबन्ध कहा है। स्त्री-कुटुम्ब, परिवार पर लक्ष्य जाता है तो पापपरिणाम है। कोई उसमें अबन्ध परिणाम; परद्रव्य के आश्रय से विकल्प है, उसमें अबन्ध परिणाम कभी होता नहीं।

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्धों का ध्यान। सिद्ध परद्रव्य हैं। जितना विकल्प उठता है उतना पुण्यबन्ध का कारण है। अपने स्वरूप की अन्तर एकाग्रता संवर, निर्जरा का कारण है। वह पहले कहा था। पहले गाथा में (आ गया है), परद्रव्य न चिन्तये। सिद्ध भी परद्रव्य है। अपना द्रव्य है नहीं। समझ में आया? परद्रव्य, पहले आया था न? एक गाथा में आ गया। परद्रव्यं न चिन्तये। १८४ गाथा। अपने आ गयी है। इसमें थोड़ा-थोड़ा लिख लिया है। सब नहीं रहता, इसलिए थोड़ा-थोड़ा लिख लिया। सेठ आये, तब कहा था न? सेठ! पहले सब देख लिया था। १८४ है, देखो!

आत्मा सद्भावं आरक्तं, परद्रव्यं न चिन्तये।
ज्ञानमयो ज्ञान पिण्डस्य, चेतयन्ति सदा बुद्धै॥१८४॥

है न? परद्रव्य की चिन्ता न की जाए। परद्रव्य कोई भी हो, अपने द्रव्य सिवाय। परद्रव्य का भेद लक्ष्य में आया, (उसमें) विकल्प उठता है, वह पुण्य है। आहाहा! लोगों को सत्य धर्म क्या चीज़ है, उसकी पहिचान भी नहीं, श्रद्धा का ठिकाना नहीं, सम्यग्दर्शन तो कहाँ रहा? और धर्म मान ले। अनादिकाल से ऐसा ... है। है न? '**आत्मा सद्भावं**' अपने सद्भाव में '**आरक्तं।**' '**परद्रव्यं न चिन्तये, ज्ञानमयो ज्ञान पिण्डस्य।**' अकेला ज्ञानमय आत्मा। अपना चिन्तये अर्थात् अनुभव करना। चिन्तये का अर्थ विकल्प करना, ऐसा नहीं है। '**सदा बुद्धै**' देखो! '**सदा बुद्धै**' ज्ञानी को सदा अपने द्रव्य का आश्रय करके

लीनता करनी। '**सदा बुद्धै।**' '**बुद्धै**' अर्थात् ज्ञानी सम्यग्दृष्टि। समझ में आया? कितने अर्थ समझना, इसमें कितना याद रखना एक घण्टे में? भाई! तेरे में तो केवलज्ञान लेने की ताकत है। बापू! तू प्रभु है। यह तो प्रभु होने की बात है। आहाहा! क्या कहा? कौन-सी चलती है? २७२। उसमें २४८ ली।

पात्रदान करने से, उसकी भावना करने से मिथ्यादृष्टि की शुद्धि हो सकती है। उसका अर्थ शुभभाव, हों! यहाँ शुद्धि का अर्थ संवर-निर्जरा होती है, ऐसा नहीं। मिथ्यादृष्टि हो.. समझ में आया? मिथ्यादृष्टि भी सच्चे ज्ञानी को दान करे तो वह शुभ विकल्प है। समझ में आया? परद्रव्य का आश्रय जितना हो, उतना विकल्प है। सम्यग्दृष्टि को भी पात्रदान में विकल्प ही है। और शुद्धात्मा की भावना से परिपूर्ण सम्यग्दृष्टि है। उनको पात्रदान का फल स्वर्गगमन है। समझ में आया? ...२७८। '**कर्म क्षिपंति**' लिया है अर्थात् वह संवर, निर्जरा करे—ऐसा नहीं है। पापकर्म क्षय होता है, ऐसा अर्थ लेना। और पुण्यबन्ध होता है तो स्वर्ग में जाते हैं, ऐसा लेना। समझ में आया?

एक ओर परद्रव्य के चिन्तवन से राग और एक ओर परद्रव्य को आहार देने से कर्म क्षय हो, ऐसा है ही नहीं। वह तो पाप का परिणाम हट जाते हैं, पुण्य परिणाम होता है तो उतना पाप खिरता है। बाकी उसमें... लिखा न? '**पात्र दानं च भावेन।**' '**भावना शुद्ध सम्पूर्ण**' सम्यग्दृष्टि '**दानं फलं स्वर्ग गामिनन।**' स्वर्ग में जाएगा। समझ में आया? पाप नहीं होता। उसमें लगा दे कि गुरु को आहारदान देने से भव का नाश हो जाएगा, परित संसार हो जाएगा। कभी है नहीं। आहाहा! व्यवहार पराश्रित क्या है, स्वाश्रित क्या है, (उसे समझे) बिना वीतरागमार्ग में गड़बड़ हो जाए। समझ में आया? अपनी स्वच्छन्दता से अर्थ करे तो शास्त्र का विरोध हो जाए। २७२।

'**पात्र दानं च शुद्धं, कर्म क्षिपन्ति सदा बुद्धै।**' देखो! '**जे नरा दान चिन्तते।**' सम्यग्दृष्टि को भावना होती है। भरत चक्रवर्ती जैसा छह खण्ड का धनी क्षायिक समकिती। आहार के समय.. ओहो! सम्यग्दृष्टि मुनि सन्त भावलिंगी हमारे आँगन में कल्पवृक्ष कहाँ! सम्यग्दृष्टि, सम्यग्दृष्टि मुनि की भावना करते हैं। बड़ा बँगला है। चक्रवर्ती है न। इन्द्र जैसा तो बँगला होता है। ... रत्न को पहनकर बाहर निकले। बँगला तो बहुत दूर है। दरवाजे

(उतने हैं)। बाहर निकलकर (भावना भाते हैं), अरे..! कोई मुनि.. भावलिंगी सन्त, हों! सम्यग्दृष्टि अनुभवी, ऐसी भावना करते हैं कि हमारे.. तभी ऊपर से मुनि उतरते हैं। उतरते हैं। ओहो! आज मेरे आंगन में कल्पवृक्ष आया। उतनी शुभभाव की भक्ति सम्यग्दृष्टि को आये बिना रहती नहीं। परन्तु वह शुभभाव है। वह संवर, निर्जरा नहीं। वह बात समझने की है। इसलिए वह गाथा ली थी।

'**जे नरा दान चिन्तते, अविरत सम्यग्दृष्टितं।**' उसको अविरत सम्यग्दृष्टि कहते हैं। दान की भावना होती है। मुनि को दान, समकिती को समकिती दे, समकिती श्रावक को दे, समकिती मुनि को दे। ऐसी भावना है। परन्तु वह सब पाप का थोड़ा क्षय होता है, पुण्य का बन्ध होता है। दृष्टि स्वभाव पर है। जितनी एकाग्रता स्वभाव में (है), उतनी संवर, निर्जरा होती है। (समय) हो गया.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)